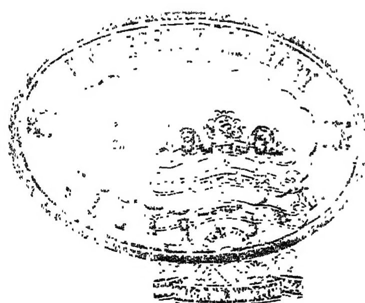
'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रंथांक ६

पंच-प्रदीप

शान्ति एम. ए.



भा र ती य ज्ञा न पी ठ का शी

ग्रन्थमालासम्पादक और नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. ए., डालमियानगर

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय,
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण ३०००
जनवरी १९५१
मूल्य दो रुपये

मुद्रक
देवताप्रसाद गहमरी
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

पंच-प्रदीपकी

प्रथम पंक्ति सूची

"ओ मेरे सीमाहीन !

तुम्हें

यह

सीमित-हृदय

समर्पित

है"

आमुख

लेखक, श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री शांति एम० ए० का नवीन काव्य-संग्रह 'पंच-प्रदीप'के नामसे पाठकोंके सामने आ रहा है। हिन्दी कविताके प्रेमियोंको कवयित्रीका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है; शांतिजी के और भी कई काव्य-संग्रह इससे पहिले प्रकाशित हो चुके हैं और वे अपनी मौलिकता एवं विशिष्टताके कारण हिन्दी संसारका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लोकप्रिय बन चुके हैं।

हिन्दी कविताके आकाशमें श्री शांति एम० ए० अपना शुभ्र स्फटिकोज्ज्वल व्यक्तित्व लेकर उदित हुई हैं। उनमें स्त्रीसुलभ शील तथा सुरुचिके साथ काव्योचित प्रतिभाका अत्यंत मनोरम समन्वय मिलता है। उनके काव्यका प्राणोच्छ्वसित पदार्थ अत्यंत मार्मिक भावनाओं तथा सूक्ष्म संवेदनाओं का बना हुआ है, जिसमें धूप-छाँहकी तरह प्रेरणाओंका आलोक झलकता रहता है। उसमें 'संसृति लोकका कल्याण अत्यंत पास लेकर खड़ी हैं। उनके हृदयस्पर्शी गीतों तथा छंदोंसे जीवनकी गहन व्यापक अनुभूतियाँ झाँकती रहती हैं और उनका उद्वेलन स्वर्गीय आशा तथा प्राणप्रद उद्बोधनका रूप धारण करता रहता है। उनकी वाणीका संचय यदि 'बुरा नहीं जो हो जाता है' गाकर ढाढ़स बँधाता है तो 'तुम नहीं अभी भी निराधार' कहकर सान्त्वना तथा बल भी देता है। घनीभूत अंधकारके क्षणोंमें भी एक प्रकाशकी किरण फूट पड़ती है, अथवा अंधकारकी भीषणता एक तटस्थ चेतनाके तटपर टकराकर निरस्त हो जाती है, उन्हें सदैव 'आगे सबेरा खड़ा' दिखाई देता है।

शांतिजीका कविहृदय संस्कारतः एक स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनों, सुख-दुखके मधुर-तिक्त संवेदनों तथा बाह्य जगत्के आघातों और विक्षोभोंको एक स्वस्थ संयमन तथा आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कहीं भी कवियित्री की समर्थ भावना ऊबड़-खाबड़ धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नहीं प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामें उड़ती ही दिखाई देती है। यत्र-तत्र उसमें जगत्के संघर्ष तथा जीवनके कटु अनुभवोंका दिग्दर्शन मिलता है, पर या तो वह मानवीय संतुलन ग्रहण कर लेता है अथवा विवेक शक्तिकी उपेक्षासे पराजित हो जाता है। कहीं वह निराशामें डुबकी भी लगाती है तो नवीन आशाकी रत्नराशिको खोजनेके अभिप्राय से। युगीन चेतनासे प्रभावित होकर उनकी कविता विचारोंका भी आदर्श बनना चाहती है किंतु मुख्य झंकार उसकी है भावना ही। जैसा कि वह स्वयं भी कहती हैं:

भावोंका आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !
जिसकी उँगलीने है मेरा
किया पंथ निर्माण,
वह निर्माण कि चाह रहा जो
अग जगका कल्याण;
वह कल्याण छिपा है जिसमें
मौन विगम बलिदान,
वह बलिदान जिसे समझा है
सबने ही अवसान,
पर जिसपर अवलंबित मेरे सपने आशातीत,
भावोंका आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

अतः कवयित्रीके स्वरोंका संगीत भावनाके शक्ति-सौन्दर्यसे ओतप्रोत है जिसमें वैयक्तिक सुख-दुखकी अनुभूतियोंको ऊर्ध्व तथा व्यापक बनानेका सफल प्रयत्न मिलता है, एवं इधर-उधर जीवन तथा विश्व-संघर्षकी छोटी-बड़ी झाँकियां तथा एक आशामयी रहस्यमयी शक्तिपर अटल विश्वासकी भी झलक मिलती है। निःसंदेह उसमें विद्रोहकी हुंकार भी संस्कृत रुचि तथा भावनाके संतुलनके कारण सौन्दर्यगरिमा तथा गंभीरता बनकर निखर उठती है।

कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका संतुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवीजीकी झंकारोंको आत्मसात् कर उन्हें नवीन रूप प्रदान कर देती है।

हिन्दी काव्यकी भूमिकापर श्री शांतिजीके सौम्य आगमनका मैं प्रसन्न मनसे अभिवादन करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी प्रतिभाके विकासके साथ ही उनकी रचनाओंमें नवीन शोभाके वैभवका समावेश होता रहेगा। हिन्दी कविताको सदैवसे अपनी कवयित्रियोंका गौरव प्राप्त हुआ है, मुझे विश्वास है 'पंच-प्रदीप'की शिखा भी उत्तरोत्तर उन्नत होकर उस गौरवको वहन करनेमें समर्थ होगी। मेरी शुभ कामनाएँ उसके साथ हैं।

स्वगत—

यदि जीवन एक प्रवाह है तो कविताकी प्रत्येक कड़ी उसमें उठनेवाली वह तरंग है जो तटोंको निनादित करनेके अतिरिक्त उसके गहन धरातलमें रोमांच भरनेकी क्षमता रखती है। चाहे उसमें वेदना हो, उल्लास, ममता अथवा निर्वेद; प्रत्येककी अनुभूति कविके जीवनकी अस्तव्यस्तताके साथ इस प्रकार अभिन्नरूपसे संबंधित रहती है कि उनका काव्यके रूपमें सत्य, शिव और सुन्दरके रंगोंसे चित्रण मानो कविके अंतरकी प्रतिमा है। इसलिये कविकी कविताको समझना उसके जीवनकी बहुमुखी आलोचना है।

बुद्धिके क्षेत्रमें जो स्थान संयमका है, हृदयके क्षेत्रमें वही स्थान कविताका है। संयम बुद्धिको परिपक्व करता है, कविता हृदयको शुद्ध कर देती है; उसके विकार धो देती है। इस दृष्टिसे कविताका चिंतन, लोक-रंजनका समन्वय लोक-हितसे सुन्दरतापूर्वक कर सकेगा।

श्रद्धेय पंतजीने आमुख लिखकर प्रेरणाको प्राण दिये। उनके प्रति मेरी कृतज्ञताके भावोंको उपयुक्त भाषा ही नहीं मिल पाई !

बस इतना ही—

—शान्ति

१७ बी, मोतीलाल नेहरू रोड,
प्रयाग

१

जल उठे मेरे पंच-प्रदीप !

चला रवि लेने को विश्राम,
दिवस बनने रजनी अभिराम,
तिमिर से करने को संग्राम,
आ गई गिरती पड़ती शाम,
माँगने लगी विदा जब रश्मि, उदित शशि के हो खड़े समीप !
जल उठे मेरे पंच-प्रदीप !

लहर प्रतिकण में भर अमरत्व,
सिन्धु से लेने चली ममत्व,
उदधि ने अपना देख प्रभुत्व,
ले लिया जीवन का भी स्वत्व,
वही बन उठा गगन में स्वाति, छिपा जब बैठी उसको सीप !
जल उठे मेरे पंच-प्रदीप !

किया जब अवनी ने श्रृङ्गार,
व्योम छू तारावलि सुकुमार,
माँगने लगा 'प्रकृति' से प्यार
पुरुष से पूजा का उपहार
मनीषी के जब हिलते हाथ बढ़े लेकर के सातों द्वीप !
जल उठे मेरे पंच-प्रदीप !

[आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से]

२

साथी आगे खड़ा सवेरा !

सूखे ओठों में कलरव ले,
कलरव में निशि का वैभव ले,
पुलकित प्राणों का शैशव ले,
लेकर मधुऋतु की डाली पर मंत्रमुग्ध कोकिल का डेरा !
साथी आगे खड़ा सवेरा !

भ्रमरों को उन्मुक्ति मिली है,
नीहारों को मुक्ति मिली है,
जीवन को अनुरक्ति मिली है,
थके हुये प्राणों को फिर से नूतन आशाओं ने घेरा !
साथी आगे खड़ा सवेरा !

अब दिन का अवसान न होगा,
संध्या का निर्माण न होगा,
तम का दीपक-दान न होगा,
मेरे भाव-विहग संभवतः माँगेंगे अब नहीं बसेरा !
साथी आगे खड़ा सवेरा !

३

मेरा स्वप्न है सुकुमार !

भावनाओं सा मृदुल जो,
याचनाओं सा सजल जो,
मान ले कैसे भला दृढ़ सत्य को आधार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

शांति का निर्देश वह है,
क्रांति का संदेश वह है,
अग्नि को जल, और जीवन के लिए अंगार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

है स्वयं जो सिद्ध पूरा,
किंतु जो फिर भी अधूरा,
सह न पाया कल्पना का भी कभी जो भार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

४

जीवन पर अधिकार है !

शैशव पर पाकर विजय,
कुसुमों से इतिहास लिख,
अधरों के उन्माद से,
चल-नयनों की प्यास लिख,
दुर्बल मानव को मिला यौवन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है

क्रमशः जीवन-मंच पर
सुख-दुख अभिनेता बने,
दृश्य यवनिका के रहे,
कुछ हँसते, कुछ अनमने,
मृदु भावों को रुदन पर, गायन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है !

प्रात उतर आता कि जब
निशि के मौन निकेत से,
मधुऋतु आ जाती यहाँ
पतझर के संकेत से
तब, प्यासी मरुभूमि को सावन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है !

६

यह किस लिए, यह किस तरह !

मन को मिटाकर भूल में,
तन को मिटाकर धूल में,
निर्माण मेरा नाश से चुपचाप कर लेता सुलह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

बैठी किनारे जब रही,
यह बात दुनियां ने कही,
क्या देखना ही चाहती है सिंधु की सीमा सतह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

झुकता तनिक सा व्योम भी,
ऊपर कभी उठती मही,
फिर चूम लेते हैं परस्पर युग युगों तक दूर रह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

६

जब पुलकित प्रति अणु-अणु था उर-सरि की लहर लहर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अम्बर का !

पहले निशीथ ने पहनी
तारावलि की मणिमाला,
था हँसा देखकर जिसको
संध्या का शशि रखवाला,
अब उदित बाल-रवि निकला
हँस-हँस नीहार लुटाने,
तम गया पार प्राची के
रूठी रजनी को लाने,

जब प्रकृति पुरुष का सुखमय संधान सधा भांवर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अंबर का !

शतदल ने आज न अब तक
अलियों के बंधन खोले,
आश्चर्य कि बंदी-अलि भी,
चुप रहे, नहीं कुछ बोले,
मलयज ने वातायन पर
ली एक मस्त अंगड़ाई,
किसलय ने खोल पंखुड़ियां,
जी भर सौरभ बिखराई,
आह्वान किया जब जग ने मानव के पुलकित स्वर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अंबर का !

है चित्र खींचता नभ में
वह बैठा चतुर चितेरा,
कलियों में हँस पड़ता है
बन कर प्रकाश का घेरा,
दोनों हाथों में लेकर
कोई लाली बिखराता,
सम्मुख दिन सहसा जगकर
है, देखो, दौड़ा आता,
जब किसी छली ने खींचा चिर-नूतन चीर तिमिर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अंबर का !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

७

मेरी दुनियां बदल रही तो मौसम क्यों न बदल जाते हैं !

मधुऋतु आता तो आता पर
पतझड़ भी क्यों आ जाता है
सत्य, शिवं, सुन्दर से पूरित
वे दिन याद दिला जाता है,

विगत स्वर्ण-घटनाओं के चलचित्र सामने आ जाते हैं !
मेरी दुनियां बदल रही तो मौसम क्यों न बदल जाते हैं !

वह उपवन जिसके आगे मृदु
मधुऋतु भी शरमा जाता था,
वैभव देख गगन पत्तों पर
गीले सुमन बिछा जाता था,

मुरझाईं द्रुम-लतिकाओं के ढ़ेर नज़र अब भी आते हैं !
मेरी दुनियां बदल रही तो मौसम क्यों न बदल जाते हैं !

नहीं प्रकृति के सबल नियम
हैं तेरी दुर्बलता से सीमित,
मानव से है परे नियति की गति
इति-अथ से सीमित संसृति,

जिस पर था अभिमान वही तो ज्ञान मुझे यह समझाते हैं !
मरी दुनियां बदल रही तो मौसम क्यों न बदल जाते हैं !



मन क्यों निराश बना रहा ?

हिम राशि ने उठकर कहा,
जब सिंधु अधरों पर बहा,
तब, बावले, तू व्यर्थ क्यों असफल प्रयास बना रहा !
मन क्यों निराश बना रहा ?

रवि रश्मियों के दान से,
शशि-दीप के निर्माण से,
तुझको मनाता किंतु तू तम का विकास बना रहा !
मन क्यों निराश बना रहा ?

जय न दिखा संग्राम को,
गति ने दिखा परिणाम को,
था कर्म चाहा, कल्पना का मौन हास बना रहा !
मन क्यों निराश बना रहा ?

[आल इण्डिया रेडिओ के सौजन्य से]

९

अभी नहीं यह सोचा समझा !

अस्थिर है भविष्य का प्रतिक्षण,
जैसे सावन के भारी घन,
जैसा चंचल नारी का मन,
आज गया, पर कल क्या होगा, अभी नहीं यह सोचा समझा !
अभी नहीं यह सोचा समझा !

खड़ी जहां उस पथ पर रुकना,
मुझे विदित है दुर्लभ कितना,
पलकों पर आंसू का जितना,
किधर, किस तरफ़ चलना होगा—अभी नहीं यह सोचा समझा !
अभी नहीं यह सोचा समझा !

कलि को उपवन प्यार कर रहा,
रंगों से श्रृंगार कर रहा,
सजल सुनहले भाव भर रहा,
माली के हाथों क्या होगा, अभी नहीं यह सोचा समझा !
अभी नहीं यह सोचा समझा !

१०

मेरे मन की थाह न मापो !

भले-बुरे, ऊंचे-नीचे का
जिसने जग से ज्ञान न चाहा,
सब कुछ चरणों में अर्पित
करके जिसने वरदान न चाहा,
गति जिसकी पाथेय बन चुकी उस जीवन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

शैशव ने भी जिसको पकड़ा
वृद्धापन ने जिसको बांधा,
मेरी काया ने भी जिसका
भार नहीं ज्यादा दिन साधा
जो भूला संस्मरण बन गया उस यौवन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

सूरज चमका खिला चाँद
पावस ने घन-माला पहनाई,
ऊषा ने हँस जिसे जगाया,
जिसे सुलाने संध्या आई,
सब कुछ पा भी रिक्त रहा जो, नील-गगन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

११

क्यों आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

उजड़ चुका मन के मन्दिर से
जब भावों का मेला,
किसकी बाट देखता अब भी
मेरा प्राण अकेला,

अंधकार लिख रहा ज्योति से जीवन की परिभाषा !
क्यों आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

लक्ष्य-प्राप्ति अब ध्येय नहीं,
अब चलना केवल क्रम है,
शपथ आज चुप रह चलने की,
गति मेरा संयम है,

अपलक शून्य प्रतीक्षा केवल है मेरी जिज्ञासा :
क्यों आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

निज सुख-दुख अंकित करनेका
व्रत न आज ले तूली
चलती रह बस सदा निरंतर
तू कुछ भूली, भूली,

जब अथाह सा कूप बन गया है मेरा मन प्यासा !
क्यों आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

१२

यह ज्ञात था मुझको नहीं वरदान इतने पास है !

रवि को उतरते देखकर
कुछ थी गई मैं भी सिहर,
पर ज्ञात था मुझको न निशि-निर्माण इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नहीं वरदान इतने पास है !

जिसको मनाने के लिये,
जिसको रिझाने के लिये,
व्याकुल रही युग युग वही भगवान इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नहीं वरदान इतने पास है !

उन्मुक्ति को निज बल बना,
दृढ़ भक्ति को संबल बना,
संसृति खड़ी ले लोक का कल्याण इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नहीं वरदान इतने पास है !

[आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से]

१३

प्रश्न नहीं यह तो साधारण !

रोग मुझे क्यों चुप रहने का,
हँस कर सब सुख दुख सहने का,
क्यों न जगत से बदला लेकर हलका करती मैं भारी मन !
प्रश्न नहीं यह तो साधारण !

कितने शीतल हैं अंगारे,
कितने गहरे सिंधु कगारे,
पतझड़ की भूमिका बना है क्यों मेरे पलकों का सावन !
प्रश्न नहीं यह तो साधारण !

गिरे नीड़, नीड़ों की डाली,
आई बैकाली अँधियाली,
पूछ रहे हो फिर भी मेरे, तुम उड़ते रहने का कारण !
प्रश्न नहीं यह तो साधारण !

१४

विश्वास व्यर्थ चला गया !

है शोक खोने का नहीं,
है नाश होने का नहीं,
बस खेद युग युग का अमर अभ्यास व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

जिसमें निशा, शशि थे मिले,
संध्या हुई, तारे खिले,
मैं झांक भी पाई न, वह आकाश व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

तुमने न पहिचाना जिसे,
सच भी नहीं माना जिसे,
आसक्ति जब समझा गया संन्यास व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

१८

स्वप्न की पलक सजग हो सो चुकी हैं !

आरती दिन भर उतारी,
मौन वह रवि सा पुजारी,
हो गया है मान हारी,
तारिकावलियां उसी के पुण्य-पग को धो चुकी हैं !
स्वप्न की पलकें सजग हो सो चुकी हैं !

शांत मधुऋतु और उपवन,
शांत हिमगिरि, शांत कानन,
शांत जड़ है, शांत चेतन,
भाव की डाली व्यथा के मृदु विहग को खो चुकी हैं !
स्वप्न की पलकें सजग हो सो चुकी हैं !

सांध्यनिशि को बांह में भर,
ज्योति निज को छाँह में भर,
कह रहीं कुछ आह भर भर,
सुन जिसे प्राचीधरा का अंतराल भिगो चुकी हैं !
स्वप्न की पलकें सजग हो सो चुकी हैं !

१६

रात ने नहीं किया अवसाद !

चला जब नभ से शशि सुकुमार,
किरण पर ले प्राची का भार,
भार में ऊषा का उपहार,
तभी दिन बन कर आई मुग्ध निशा केवल कुछ क्षण के बाद !
रात ने नहीं किया अवसाद !

ज्ञान का लेकर मौन प्रकाश,
चला नर रचने नव इतिहास,
कुचल कर भूमि, चूम आकाश,
बन चुके थे तब तक अज्ञान, मूर्ख मानव के वाद-विवाद !
रात ने नहीं किया अवसाद !

नियति फल खाने में असमर्थ,
मृत्यु उपवन में काल-विहंग;
कर चुका पहले ही आमोद,
बहुत दिन वह संसृति के संग,
चख चुका जीवन-मधु फल और मिल चुका है अमृत का स्वाद !
रात ने नहीं किया अवसाद !

१७

स्वागत नीड़ नहीं करते हैं !

निशि में ज्योतित रजनीकर का,
प्राची पर चढ़ते अंबर का,
आधे जगे हुये घर घर का,
क्योंकि अभी उनके भावों के मूक विहग श्वासें भरते हैं !
स्वागत नीड़ नहीं करते हैं !

सुप्त पंख पतवार नहीं हैं,
चल-नभ के आधार नहीं हैं,
मुक्त पवन की हार नहीं हैं,
कहीं न तिमिर पकड़ ले उनको, इस आशंका से डरते हैं !
स्वागत नीड़ नहीं करते हैं !

द्वार अचानक खुल जाने पर,
विहगों के बाहर आने पर,
शबनम बन डाली के पत्ते पत्ते से आंसू झरते हैं !
स्वागत नीड़ नहीं करते हैं !

२०

दूर भेज मत पास बुलाओ !

दूर भेज कर शशि को तारे,
बुला रहे फिर हाथ पसारे,
अस्ताचलगामी रवि कहता मैं तो जाता हूँ, तुम आओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

मधु ऋतु लौट चला आहें भर
दिल पर भारी सा पत्थर धर,
तब पतझड़ मधुवन से कहता गीत सुनाकर इसे मनाओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

यहाँ लौट आने में विस्मय,
दूर कहीं जाने में भी भय,
ओ निष्ठुर ! मेरे दृढ़ पग को नहीं हटाओ, नहीं बढ़ाओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

२१

हो गई रात, हृदय हो मौन !

कहाँ तक तुम आँखों की राह,
बहाओगे यह सिन्धु अथाह,
विश्व से निर्मोही, हाँ किन्तु किसी के लिए सदय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

नित्य रोदन, गायन, अन्याय,
सहोगे तुम कैसे असहाय,
न कर से छूट सके पतवार हार हो मौन, विजय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

देख ली है कितनी ही रात,
किन्तु पाया है सदा प्रभात,
कौन कहता कर मृदु संकेत, अजय हो मौन, अभय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

२२

तुम मुझसे इतने दूर रहो, चाहूं, न तुम्ह पर छू पाऊं !

मैं भोली-प्यासी कलियों में
जा जा कर पुण्य-पराग भरूँ,
ऊषा के अरुणिम मस्तक पर
किरणों का सुभग-सुहाग भरूँ,

तुम हिम के अंचल से उठकर, बन मलय-पवन, चुपचाप वहो !
चाहूँ, न तुम्हें पर छ पाऊं, तुम मुझसे इतने दूर रहो !

संसृति के सपनों सा शाश्वत
कुमदी से शशि का नाता है,
पर तारावलियों का सहचर
भ पर न उतर कर आता है,

नभवासी तुमको छूने को युग-युग तक मैं कर फैलाऊं !
तुम मुझसे इतने दूर रहो, चाहूँ, न तुम्हें पर छू पाऊं !

यदि तुमको छू लूंगी तो कुछ
पावनता ही घट जायेगी,
तब मेरी पूजा ही मुझको
आनन्द नहीं दे पायेगी,

केवल अभिलाषा एक यही, तुमको दूरी का भास न हो !
चाहूँ न तुम्हें पर छू पाऊं, तुम मुझसे इतने दूर रहो !

२३

साथी यह मौसम बरसाती !

घिर आये फिर आहों के घन,
फैला निशि-वाहों के बंधन,
भीगे दृग-पंछी ले आते विकल विवश पतझड़ की पाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

उर-नभ ऊपर, नीचे मानस,
किसकी बदनामी, किसका यश,
खोजा करती प्रतिदिन बिजली लेकर के सतरंगी बाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

शूलों सी बूंदें गिरती हैं,
भूली सी बदली फिरती है,
किंतु करुण रस की कविता सी, वह मरुथल में बरस न पाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

२४

आधार हिला ! आधार हिला !

जिसका मुझको था अब तक बल,
ध्रुव सा समझी थी जिसे अचल,
मेरे मन की दुर्बलता का वह दृढ़तर कारागार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

अब तक जिन पद-चिह्नों पर चल,
झेली असफलता, पाया फल,
मेरे मन की उस क्षमता का आधार हिला, आधार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

जिसमें हैं दोनों सुधा-गरल,
जो निश्चल रह कर भी चंचल,
लघु-श्वासों से सीमित उर की ममताका पारावार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

२९

पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

एक ही जिसका हो पाथेय,
एक ही जिसके पथ का ध्येय
उसे ही यदि निर्बल पा, दूर करे दृढ़ हाथों से संसार !
पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

बैठ सागर के तट के पास,
बुझा यदि सके न कोई प्यास,
चूमकर धार, धार की लहर, लहर की बूंद, बूंद का क्षार !
पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

प्राण शतदल में है मकरंद,
इसी से श्वासों का अलि बंद,
कहीं लुट जाए सौरभ, शेष रहेगा केवल कारागार !
पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

२६

परिणाम मुझको ज्ञात था !

अनुमान यह सब था मुझे,
सहना पड़ेगा क्या मुझे,
निज लक्ष्य मुझको ज्ञात था, निज काम मुझको ज्ञात था !
परिणाम मुझको ज्ञात था !

पाथेय सागर का लिया,
जो बन सका फिर वह किया,
मेरे लिये तो मृत्यु में विश्राम, मुझको ज्ञात था !
परिणाम मुझको ज्ञात था !

प्रति भूल शत शत शूल बन,
प्रति शूल शत प्रतिकूल बन,
सम्मुख खड़े, होगा प्रबल संग्राम मुझको ज्ञात था !
परिणाम मुझको ज्ञात था !

२७

तव कंटक भी बन फूल गये !

मेरे अधरों के सुस्मृति-कण,
मेरी पलकों पर आँसू बन,
मेरी धूमिल लघु-श्वासों में,
भर गए किसी का पागलपन,
निर्ममता के पाटल तव बन ममता के सदय दुकूल गए !
तव कंटक भी बन फूल गये !

क्रमशः निश्चय आदर्श बने,
सिद्धान्त स्वयं उत्कर्ष बने,
तव असफलता के भावुक क्षण,
चिर विजय लिये संघर्ष बने,
मेरे युग-युग के प्रतिद्वन्दी झुक करके हो अनुकूल गए !
तव कंटक भी वन फूल गये !

जीवन की विगत व्यथायें भी,
सुख दुःख की करुण कथायें भी,
परिवर्तन की अस्थिरता में,
सो गईं नशीली आहें भी,
मेरे भावुक मन तुम भी तो इतिहास पुराना भूल गये !
तव कंटक भी बन फूल गये !

२८

सुन्दर सपनों की रात खतम होती है !

वस एक बार अपने देखूं सपनों में,
वस एक बार सपने देखूं अपनों में,
देखूं सीपी खाली है या मोती है !
सुन्दर सपनों की रात ख़तम होती है !

बीती संध्या पर दृष्टिपात कर लूं मैं,
रजनी रहने दूं या प्रभात कर लूं मैं,
ऊषा हँसती है किंतु निशा रोती है !
सुन्दर सपनों की रात ख़तम होती है !

लो तारे डूबे, शशि ने घूंघट डाला,
अंबर में चुपके आ फैला उजियाला,
बस यहीं यहीं की बात ख़तम होती है !
सुन्दर सपनों की रात ख़तम होती है !

२९

यह तुम मेरे गीत बताते !

अपने भावों के पनघट पर,
लहरा कर आंसू का सागर,
भीगी पलकों का संपुट भर,
अधरों पर आता मर्मर स्वर,
तब तुम मेरी विह्वलता के प्रतिक्षण को शत छंद बनाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

मेरे आंसू का खारापन,
छू कर हो जायेगा पावन,
अतः बनाकर निज को साधन,
मैंने रुदन किया तुम उसमें, आ आकर रस-राशि मिलाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

भेद आज मैं जान चुकी हूँ,
अब तो मैं पहचान चुकी हूँ,
मेरी वाणी में अक्षर बनकर तुम ही हो आते-जाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

३०

भावों का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

और गीत जिनमें अंकित हों
जीवन के उद्‌गार,
वे उद्‌गार मक्त मन को जो
कर दें कारागार,
कारागार जहाँ फूलों के
बंधन से श्रृंगार
वह श्रृंगार कि जो युग युग से
कवियों का आधार,

वह आधार कि जिस पर आश्रित किसी हार की जीत !
भावों का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

पर जिस काया को सुषमा पर
हुआ नहीं विश्वास,
वह विश्वास कि जो देता है
एक प्रबलतम प्यास,
प्यास–मिलन की आशा को जो
कर देती संन्यास,
वह संन्यास कि जो इस जग में
एक विरोधाभास,
हंसी उड़ाता मधु, मधु पायी कोयल का संगीत !
भावों का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

जिसकी उंगली ने है मेरा
किया पंथ निर्माण,
वह निर्माण कि चाह रहा जो
अग-जग का कल्याण,
वह कल्याण छिपा है जिसमें
मौन विगम बलिदान,
वह बलिदान जिसे समझा है
सबने ही अवसान,
पर जिस पर अवलंबित मेरे सपने आशातीत !
भावों का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

३१

सूने मैं मैं सोचा करती !

सोचा करती दिन ढ़लता है,
रवि अस्ताचल पर चढ़ता है,
वहीं, जहाँ पर से नित संध्या वातायन के मध्य उतरती !
सूने में मैं सोचा करती !

चेतन गतिमय श्वासें भरता,
पर जड़ सदा कर्म से डरता,
परिवर्तन प्रवृत्ति नश्वरता फिर भी क्यों दोनों में भरती !
सूने में मैं सोचा करती !

मुझे नहीं कुछ इसका दुःख है,
क्यों तम मय इस पथ का रुख है,
केवल दुःख, इस सूनेपन से क्यों मैं इतना ज्यादा डरती !
सूने में मैं सोचा करती !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

३२

इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यों !

दिव्य गंधा मान निज को
जो कली थी मुस्कराई,
देख शैशव तितलियां भी
थी अनेकों पास आईं
इष्ट ही जिसको न हो
जग में किसी को भी रिझाना,
जोड़ती वह तितलियों से व्यर्थ ही नाता भला क्यों !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यों !

एक दिन नभ में उड़े थे
पंख कुछ पैगाम लेकर
मौन प्राची के दृगों पर
मुस्कराती शाम लेकर
किंतु जाने क्या हुआ
भयभीत वापस लौट आए,
क्या किसी ने पंथ पर
दृग के कुसुम पाटल बिछाए ?
पुण्य पंथी फिर उन्हें आखिर कुचल जाता भला क्यों !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यों !

एक मन कहता कि अपने
आप क्यों निज को मिटाया,
दूसरा कहता कि पूजा थाल
प्रतिमा पर चढ़ाया,
लाभ क्या होता सुमन
यदि व्यर्थ ही में सूख जाते,
दूसरे कर यदि उसे
जाकर न मंदिर में चढ़ाते,

विकल मन निज शक्ति जगको व्यर्थ बतलाता भला क्यों !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यों !

कुछ दिनों से है न जाने क्यों
हुआ निष्काम सा मन,
रोज़ निशि लेकर उतरती
एक पतझड़, एक सावन,
डगमगाते पैर के नीचे
खिसकती भूमि जाती,
टूटती प्रतिश्वास जाने किस
तरह मन को मनाती,

दे रहा जीवन दुखद दुर्दैव निर्माता भला क्यों !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यों !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

३२

सभी ओर अब नया राग है !

सभी ओर नूतन वीणा है,
सभी ओर नूतन वाणी है,
भूमि तुष्टि का साधन है,
नभ मुक्त हृदय है वरदानी है,
जग-जीवन के तममय-पथ पर, ले अतीत आया चिराग है
सभी ओर अब नया राग है

है मानव को नई प्रेरणा,
दुर्बल मन में नयी शक्ति है,
संसृति के विधान का साधन,
आज लोक है, आज व्यक्ति है,
सत्य शिवं सुन्दर का फैला अग जग में पावन पराग है !
सभी ओर अब नया राग है

है ज्वाला बुझ चुकी, अभी भी,
हैं कुछ ज्वालामुखी दहकते,
किसी तरह पाशविक शक्ति से,
नहीं बुझाये जो जा सकते,
उसको ही शीतल करने को सागर ही बन रहा आग है !
सभी ओर अब नया राग है !

३४

बुरा नहीं जो हो जाता ह !

बुरा नहीं है दुख कह देना,
बुरा नहीं है दुख सह लेना,
बुरा नहीं जो निज छंदों में, कवि अपने सुख दुख गाता है !
बुरा नहीं जो हो जाता है !

बुरा नहीं क्षण भर का वन्धन,
बुरा नहीं है नश्वर जीवन,
आखिर मानव का जगती से अमर नहीं कोई नाता है !
बुरा नहीं जो हो जाता है !

वर्ष हर्ष ले भी जाते हैं,
वर्ष हर्ष दे भी जाते हैं,
लेता है देने को कोई यह कह मुझको समझाता है !
बुरा नहीं जो हो जाता है !

३५

गीत नहीं दुख कम कर पाते !

बीती बातों को संचित कर,
हिलते अधरों का संपुट भर,
शब्द लिखे, जो दुर्बल मन की सुप्तप्राय वेदना जगाते !
गीत नहीं दुख कम कर पाते !

लिखे भला क्या क्या किस किस पर,
उन पर जो दृग में आँसू भर,
मुझको मान चुके हैं पत्थर,
या जिनकी विस्मृति के सागर,
में सोया जीवन का निर्झर,
क्या सोचे कब तक रुक रुक कर
लिखे भला क्या क्या किस किस पर
रूढ़ि-ग्रस्त जड़ हुए विश्व में अपनों के अपनों से नाते !
गीत नहीं दुख कम कर पाते !

इन हाथों को एक व्यसन है,
इनका, लिखना ही जीवन है,
सोचे बिना कि क्या लिखते हैं यह दिन प्रतिदिन लिखते जाते !
गीत नहीं दुख कम कर पाते !

३६

तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब मेरा भूला-भटका मन
मधु-ऋतु से बन करके सावन,
वह पड़ा, तुम्हारी ममता का मेरे हित तब क्या अर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब सुख पाने का चाव नहीं,
दुख के प्रति भय का भाव नहीं,
सुख-दुख दोनों सह लेने में जब मेरा हृदय समर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब तम में हो जाने को लय
इस जीवन का असफल अभिनय,
प्रस्तुत, तब मुझको नायक का शृङ्गार मिला तो व्यर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

[आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से]

३७

मुक्ति आज वंधन में मुझको, मुक्ति आज बंधन म !

मेरे नारी-सुलभ हृदय को नहीं किसी ने बांधा,
मैंने थक कर व्यापकता से, सीमा का व्रत साधा,
अन्तर्यामी निहित हो गया मेरे छोटे मन में !
मुक्ति आज बंधन में मुझको, मुक्ति आज बंधन में !

बंधन में ही स्वतन्त्रता की विजयश्री मिलती है,
श्वासों के पिंजड़े में कोमल काव्य-कली खिलती है,
मुझको तो अब शान्ति मिल गई अपने ही रोदन में !
मुक्ति आज बंधन में मुझको, मुक्ति आज बंधन में !

मैंने तो जानी न कभी भी निराकार की माया,
मैं तो समझी यही कि तुम हो प्राण और मैं काया,
स्वयं पूज्य बन गई पूज्य के पुण्य चरण पूजन में !
मुक्ति आज बंधन में मुझको मुक्ति आज वंधन में !

३८

आज इसमें ही मुझे सुख !

विश्व से संबंध तोड़ा,
पर न मैंने लक्ष्य छोड़ा,
मृत्यु भी मेरे चरण का फेर पाई है नहीं रुख !
आज इसमें ही मुझे सुख !

दूर अब, कल पास थे जो,
मौन अब, विश्वास थे जो,
इस व्यथित भोले हृदय के
नीड़ थे, आकाश थे जो,
पर न जिनपर था मुझे अधिकार उनका कौन सा दुख !
आज इसमें ही मुझे सुख !

रक्त दृग जल की लड़ाई,
तू न अब तक जान पाई,
चीख मुझसे पूछते हैं हो खड़े गत वर्ष सम्मुख !
आज इसमें ही मुझे सुख !

३९

पतझार का यह प्यार है !

काली निशा के भाग्य को,
मधु-प्रात के दुर्भाग्य को,
बस जान पाये प्राप्त यह सब को नहीं अधिकार है !
पतझार का यह प्यार है !

जब नीड़ हो, कोकिल न हो,
जब मार्ग हो मंजिल न हो,
तब राग बन जाता हृदय का मौनतम उद्‌गार है !
पतझार का यह प्यार है !

मिलते जिन्ह जाना यहाँ,
रोते जिन्हें गाना यहाँ,
वह मृत्यु ले बढ़ते जिन्हें नर दे रहा संसार है !
पतझार का यह प्यार है !

४०

जीवन मुझसे पूछ रहा है !

लो अब मरुथल में मृग आता
दृग-घन से सावन बरसाता,
'उसको क्या देना' बालू का कण-कण मुझसे पूछ रहा है !
कण-कण मुझसे पूछ रहा है !

सो, धरती के नीचे गहर
कब तक शांत रहें ये लहरें,
'मुझ से क्या कहना'—यह मेरा जीवन मुझ से पूछ रहा है !
जीवन मुझसे पूछ रहा है !

विस्तृत मन में सूनापन भर
पड़ा सामने सूखा सागर,
'उसको क्या देना'—बालू का कण-कण मुझसे पूछ रहा है !
कण-कण मुझसे पूछ रहा है !

४१

मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

कुछ वेद-मंत्र के घेरों ने,
भांवर के सातों फेरों ने,
नव-अभिनय की अभिलाषा ने, अभिलाषा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

मधुऋतु के मंजुल सपनों ने,
इन नये नये से अपनों ने,
इनकी उत्सुक जिज्ञासा ने जिज्ञासा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

कितनी कोमल, कितनी सुन्दर,
कितनी अच्छी, कितनी रुचिकर,
जीवन की इस परिभाषा ने, परिभाषा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

४२

हो गया मेरा हृदय उदास !

किसी के कुछ कहने के पूर्व,
मिला मुझको संदेश अपूर्व,
बहाए बिना नयन का नीर किसी ने शीतल कर दी प्यास !
हो गया मेरा हृदय उदास !

शून्य की सरिता के उस पार,
नियति साकार, भाग्य साकार,
दीन धरती की बाहें चूम रो पड़ा मुक्त-हृदय आकाश !
हो गया मेरा हृदय उदास !

निठुरता मेरी किसे प्रसाद,
समझ पाई इतने दिन बाद,
किसी के उर में मधुरिम मोह बन गया जब मेरा संन्यास !
हो गया मेरा हृदय उदास !

४३

आत्म समर्पण नहीं सरल ह !

किसन निज अस्तित्व भुलाया,
किसने निज व्यक्तित्व भुलाया,
सीमित हुआ एक शतदल पर किसका हृदय-भ्रमर चंचल है !
आत्म समर्पण नहीं सरल है !

किस पर हैं शूलों की लड़ियां,
किस पर फूलों की फुलझड़ियां,
क्या जानेगा गिन न सका जो
अपने हाथों की हथकड़ियां,
एक कली तक ही सीमित कब मंजुल भाव भरा परिमल है !
आत्म समर्पण नहीं सरल है !

प्रतिफल यहाँ नहीं मिलता है
संबल यहाँ नहीं मिलता है,
पर पीना जब, व्यर्थ पूछना यह अमृत है, या कि गरल है !
आत्म समर्पण नहीं सरल है !

४४

मेरे मौन हृदय की पीड़ा जान नहीं जग पाया !

कितने अभिशापों को मैंने
मधुमय दान दिये हैं
कितने ही पापों को मैंन
पुण्य प्रदान किये हैं
कितना विष पी बन पाई है यह अमृत की काया !
मेरे मौन हृदय की पीड़ा जान नहीं जग पाया !

हाथ रखा माथे पर फिर भी
यह कन्धे तो भारी
सब कुछ दे घर खाली आया
बंजारा व्यापारी
चला बनाने था कुछ पर कुछ और स्वयं बन आया !
मेरे मौन हृदय की पीड़ा जान नहीं जग पाया !

यह बौरों की बास, आम के कुंज
पियू की बोली
पर मेरे यौवन का केवल
पतझड़ ही हमजोली
वह पतझड़ आये कैसे मन में मधुऋतु की माया !
मेरे मौन हृदय की पीड़ा जान नहीं जग पाया !

४९

मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन !

फल के वृक्ष, वृक्ष की डाली
ऊषा जिनपर बन वैकाली
भर भर सुधा सलिल की प्याली
दुर्बल मानव मृग को देती, दृग का निर्झर मन का सावन
मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन !

जिनने भोले बच्चे पाले
पलकें चूमीं, गात संभाले
बन कर नीड़ों के रखवाले
पहुँच न पाये कोई इससे रखे वहां शूलों के बन्धन
मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन !

कुसुम लिये है हास तुम्हारा
तितली बन सब ओर निहारा
नभ बन देते तुम्हीं सहारा
समझ गये तुम यहीं कहीं हो मेरे पत्थर ! मेरे पावन
मेरा मधुऋतु ! मेरा मधुवन !

४६

किस नीड खोजने को व्याकुल मेरा यह भोला प्राण-विहग !

जिसमे प्रकाश तो रहे सदा
क्षणभर भी किंतु अशान्ति न हो,
जिसमे विद्युत की गति तो हो
पर मानव-मन की क्रांति न हो,

कल्पना-कली मुस्काती हो
छूकर डाली के शूल-फूल,
भावना लता लहराती हो
ले निज आदर्शों का दुकूल,

अनुरक्ति बन गई हो पवित्र
अपना अक्षय सयम लेकर,
आसक्ति सफल बन जाती हो
श्रद्धा का एक नियम लेकर,

"जाने क्या" बनने की धुन मे
जाने क्या-क्या बन जाता हो,
भावुक बन निर्मम बनता हो
पाषाण करुण कहलाता हो,

आहो के तानो-वानो से झुरमुट वनता हो जाल स्वय !
छू उलझ अचानक जाता हो मेरा भोला अनजान विहग !
वह नीड खोजने को व्याकुल मेरा यह भोला प्राण-विहग !

४७

भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

याद रहने का जिसे था
प्राप्त वर – वरदान,
वह भुलाया जा सके
यह भूल एक महान,
बन चुके हो जब कि तुम
नर से स्वयं भगवान,
किस तरह से हो सकोगे
तुम पुनः पाषाण,
शशि तुम्हें मैं रोक लूंगी बन मिलन की रात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

भूल जाना, जान यह
लेना नहीं आसान
पूर्व ही करना पड़ेगा
यह हृदय श्मशान,
तुम स्वयं गति बन रहोगे
हैं कि जब तक प्राण,
बस यहीं रह कर रहेगा
यह हठी मेहमान,
चूम रवि को भी सकेगा बन प्रदीप्त प्रभात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

यदि उदय निश्चित विदित
निश्चित स्वयं अवसान,
पर नहीं निश्चित अमिय के
साथ है विषपान,

स्नेह है यद्यपि नहीं
आदान और प्रदान,
किन्तु बादल को नहीं
मरुभूमि का अनुमान,

जो कि हरियाती कभी पा अश्रु की बरसात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

यदि कभी भूले, करूंगी
पंथ वह निर्माण,
हो अंधेरा हर तरफ
हो सामने सुनसान,

ले युगल कर में युगों का
मौन संचित ज्ञान,
विश्व को देने चलूंगी
मुक्ति या कल्याण,

पर असह्य होगा तुम्हारा यह करुण आघात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

४८

यह तो सत्य की थी हार !

मौन ही संदेश थे जब,
मौन ही आदेश थे जब
मिल सका था कल्पना का काव्य को आधार !
यह तो सत्य की थी हार !

भार भी मैं सह न पाई,
प्यार भी मैं सह न पाई,
और दृग जल को मिले कटु व्यंग के अंगार !
यह तो सत्य की थी हार !

धर्म कितने दूर पर थे,
मर्म कितने दूर पर थे,
थी कहाँ पर राह मेरी,
कर्म कितने दूर पर थे,
मचलते थे प्राण करने पार पारावार !
यह तो सत्य की थी हार

४९

यदि गीत को मिलता कभी आधार !

यदि भावनाएं धर्म का धर रूप,
यदि कल्पनाएं कर्म का धर रूप,
यदि विश्व के अपवाद बन सिद्धांत,
करते सत्य को क्षणभर कभी साकार !
यदि गीत को मिलता कंभी आधार !

अधरों को सके हो प्राप्त कभी उड़ान,
पुतली को मिले यदि सिंधु से जलदान,
मेरे युग-युगों के नील-नभ को मौन
यदि मिल सके धूमिल धरा का भार !
यदि गीत को मिलता कभी आधार !

बालू, घाट, जल फिर थाह उसमें सीप,
पर वह स्वाति के ही है सदैव समीप,
होती शांति केवल है उसे ही प्राप्त
पलकों पर लुटाता जो चले अंगार !
यदि गीत को मिलता कभी आधार !

६०

सुख दुख तुमको आज विदाइ !

जिस दिन जो होना होता है,
उस दिन वह हो कर रहता है,
नियति-चक्र से इस जीवन की बच कोई भी घड़ी न पाई !
सुख दुख तुमको आज विदाई !

उर की धड़कन श्वासों से उठ,
अधरों पर आ रुक जाती है,
कवि ने उसको पा लेने को बहुत दिनों ताक़त अजमाई !
सुख दुख तुमको आज विदाई !

पलकों पर अटके उलझे क्षण,
लिख न सके अबतक जीवन भर,
मेरे चरणों की दुर्बलता, मेरी बाहों की अंगड़ाई !
सुख दुख तूमको आज विदाई !

६१

मेरी सीमा है नहीं प्रणय !

है शयन-कक्ष तक सीमित कब
मेरे आदर्शों की उड़ान,
मेरे पंखों में अतुल शक्ति
मेरे आगे भी आसमान,
नीड़ों के बंधन पर मेरी हो चुकी विजय, हो चुकी विजय !
मेरी सीमा है नहीं प्रणय !

मैं सोच रही जग में कैसे
नारी-पद को उत्थान मिले,
युग के पाशविक मनुष्यों को
फिर मानवता का दान मिले,

फिर हो संसृति के कर्णधार, विश्वास, शांति, संतोष, विनय !
मेरी सीमा है नहीं प्रणय !

यदि प्रणय मुझे देने आया
अपने पन के प्रति अहंभाव,
यदि पूर्ण कर रहा वह केवल
नारी की काया का अभाव;
यदि त्याग, सत्य, जन, मन के प्रति
दे रहा मुझे वह है विरक्ति,
यदि द्वेष, क्रोध की क्रीड़ा की
दे रहा मुझे वह नई शक्ति;

तब क्यों न विश्व की नारी को हो सके मान्य मेरा निर्णय !
मेरी सीमा है नहीं प्रणय !

८२

अब है व्यर्थ रोदन-हास !

दोनों आज दिखते व्यर्थ,
दोनों हो चुके असमर्थ,
दोनों ही मुझे निज-प्रति कभी पाए न दे विश्वास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

यह पाएं न दे वरदान,
यह पाएं न ले अभिशाप,
करता आज भी है विश्व पहले की तरह उपहास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

दोनों मोह के हैं रूप,
हैं विद्रोह के प्रतिरूप,
रोने और हँसने से मुझे अच्छा लगा संन्यास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

५३

तज दिया अमरत्व जिसने ह वही तो नर कहाया !

बन वही सकता जलद
हो आग से भी मोह जिसको,
पा वही सकता कि होता
त्याग से भी मोह जिसको,
हृदय वीणा से कभी भी
तोड़ जो संबन्ध सकता,

रागिनी का प्यार लेकर, है वही तो स्वर कहाया !
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया !

प्राप्ति की आशा तथा
है हानि का भय साथ रहता,
जो न है, अथवा किसी का
मौन परिचय साथ रहता,
साथ हो सकता किसी के
साथ को ही छोड़ने में,

दूर जो परदेश से, वह ही पथिक का घर कहाया !
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया !

एक दिन पत्थर स्वयं से
पूछने निज कर्म बैठा,
एक दिन पत्थर स्वयं से
पूछने निज धर्म बैठा,
और वह बोला स्वयं
जो मान दे अपमान सहता,

अग्नि बरसाता स्वयं से मिल वही पत्थर कहाया !
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया !

५४

मुझे अब औरों से क्या काम !

स्वाति ही जिसकी हरता प्यास,
व्यर्थ है उसके हित आकाश,
एक ही वनमाली का श्रेय, किया करता उपवन अभिराम !
मुझे अब औरों से क्या काम !

मिल गये जिसको योगीराज,
करेगा क्या ले सैन्य-समाज,
जीत में नहीं रहा संदेह चले तो चला करे संग्राम !
मुझे अब औरों से क्या काम !

तुम्हें लख साहस अपने आप,
चला आता बनकर पदचाप,
अरे पगली मीरा के कृष्ण बहुत है मुझे तुम्हारा नाम !
मुझे अब औरों से क्या काम !

८८

शशि तुम भी दो मुझे बधाई !

जो तुमसे भी ज्यादा उज्वल,
तम को हरने का ज्यादा बल,
दिखा रही जो पंथ जगत को ऐसी निधि है मैंने पाई !
शशि तुम भी दो मुझे बधाई !

जीत चुका जो कोमल मन को,
मधु को, मधु पायी मधुवन को,
हरा न पाई कोकिल जिसको, जीत नहीं पाई अमराई !
शशि तुम भी दो मुझे बधाई !

मुझमें, ज्यों कलियों में सौरभ,
अथवा निशि में ज्यों नीला नभ,
हिमगिरि से विशाल मानस में सागर सी अनादि गहराई !
शशि तुम भी दो मुझे बधाई !

५६

याद आती है तुम्हारी ही निरंतर
क्यों न जाने हार में भी, जीत में भी !

रात आती है तुम्हारी याद लेकर,
रात जाती है तुम्हारी याद लेकर,
समय की गति में तुम्हारी चेतना है,
दिवस के प्रारंभ-उपसंहार में भी !
याद आती है तुम्हारी ही निरंतर
क्यों न जाने जीत में भी, हार में भी !

क्या यही है सत्य तुम केवल मरीची,
व्यर्थ ही दृग से हृदय की भूमि सींची,
अधर के प्रतिबंध हैं कुछ गुनगुनाते,
विश्व में जो हैं बिखरते गीत बनकर !
क्यों न जाने हार में भी, जीत में भी,
याद आती है तुम्हारी ही निरंतर !

जब कि पंछी बोलकर रवि को जगाते,
जब कि तारे सिमट शशि के पास आते,
सुन तभी लेती मधुर आवाज परिचित
अलस नभ के मुस्कराते प्यार में भी !
याद आती है तुम्हारी ही निरंतर
क्यों न जाने जीत में भी, हार में भी !

५८

कोई देने चला बधाई !

रजत करों में मुक्ता दल भर,
ज्योतित करता धुंधला अंबर,
भरकर नव-निशीथ में अपनी अलसित श्वासों की अँगड़ाई !
कोई देने चला बधाई !

कुछ थोड़ा प्रकाश बढ़ आया,
रही न पीछे फिर भी छाया,
पथ की निर्जनता में लेकर केवल अपनी ही परछाईं !
कोई देने चला बधाई !

खोल तिमिर का लघु घूंघट पट,
मधु से भर भावों का संपुट,
उषा, उदित-रवि बनकर, देखो, नव दंपति की जोड़ी आई !
कोई देने चला बधाई !

६९

विदा के समय कौन सा गीत !

विदा के समय व्यर्थ है मोह,
व्यर्थ विधि की गति से विद्रोह,
व्यर्थ छूकर श्वासों के तार छेड़ना भावपूर्ण संगीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

करूँ किन किन बातों की याद,
कि किन किन सपनों का अवसाद,
आज इतने वर्षों के वाद,
जगाऊं कैसे है सुकुमार अभी तक सोया हुआ अतीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

कह रहा कोई मुझको रोक,
शोक में भी तो है आलोक,
नियति से दुर्बल मन की हार लिये हो शायद कोई जीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

६०

जीवन जीवन में भेद नहीं !

दृग हो, सरिता हो या सर हो,
सागर, गागर हो, निर्झर हो,
शीतलता दे ही जाते हैं, जीवन जीवन में भेद नहीं !
जीवन जीवन में भेद नहीं !

कवि हो, किसलय हो या कलि हो,
उपवन हो, मधुऋतु या अलि हो,
परवशता दे ही जाते हैं, बंधन बंधन में भेद नहीं !
बंधन बंधन में भेद नहीं !

किरणें हों, शशि हो, रजनी हो,
कंपन, वीणा हो, रमणी हो,
तन्मयता दे ही जाते हैं, गायन गायन में भेद नहीं !
गायन गायन में भेद नहीं !
जीवन जीवन में भेद नहीं !

६१

तुम नहीं अभी भी निराधार !

पलकों पर घिर घिर काले घन
नयनों में भर देते सावन,
तब दूर खड़ा कहता जीवन, मुझको शत कंठों से पुकार !
तुम नहीं अभी भी निराधार !

लख करके प्राणों का मरुथल,
भूला-भूला मृग-मन चंचल,
तब बोल उठा सहसा संयम, बालू पर कुछ जलकण पसार !
तुम नहीं अभी भी निराधार !

फल से वंचित कर्मों में रत
मैं शोकाकुल, पीड़ित, आहत
तब ममता-मय मनु का मानव, आ पास कह रहा बारबार !
तुम नहीं अभी भी निराधार !

६२

प्रेम में संतुष्टि भी है प्यास भी है !

काव्य में अनुभूति भी है चेतना भी,
चेतना में वेदना है प्रेरणा भी
सिंधु में घन और मरु का भास भी है !
प्रेम में संतुष्टि भी है प्यास भी है !

छाँह छूने को बढ़े ही हाथ जाते,
चरण गति को हैं पकड़ फिर भी न पाते.
क्योंकि दोनों दूर भी हैं, पास भी हैं !
प्रेम में संतुष्टि भी है, प्यास भी है !

चंद्र की दूरी जगत को शांति लाई,
उषा ने रवि की सुघर गागर सजाई,
दिव्य निशि-ग्रह भूमि भी, आकाश भी है !
प्रेम में संतुष्टि भी है, प्यास भी है !

६३

साथी एक रात की बात !

शशि ने तम पर जादू डाल,
पहना दी तारों की माल,
निशि की श्यामलता को चूम, बहा रश्मि का रौप्य प्रपात !
साथी एक रात की बात !

सुस्मृति ने पाया इतिहास,
पतझड़ ने पाया मधुमास,
पास खड़ी थी यद्यपि ग्रीष्म, दूर नहीं था पर मधुवात !
साथी एक रात की बात !

नील गगन था नीरव मौन
चुपके से आए तुम कौन
पाकर मुग्ध हुआ मकरंद मेरे प्राणों का जलजात !
साथी एक रात की बात !

६४

दिवस व्यर्थ बीते जाते हैं !

आँखें जग जग ज्योति चुकीं खो,
बची हुई खोती हैं रो रो,
पर जीवन पुस्तक के अक्षर पुतली से बल अजमाते हैं !
दिवस व्यर्थ बीते जाते हैं !

पथ असीम है पद सीमित है,
शेष न जिनमें कोई गति है,
फिर दिन पर दिन कंधे भी तो भारी हो झुकते जाते हैं !
दिवस व्यर्थ बीते जाते हैं !

कुछ प्रतिमा पर फूल चढ़ाते,
कुछ देहली पर ही झुक जाते,
कुछ पूजा हित हार बनाते,
इनमें से कोई तो तू है कह करके कुछ समझाते हैं !
दिवस व्यर्थ बीते जाते हैं !

६६

जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है !

त्याग लिए अनुनय आता है,
राग लिए परिचय आता है,
यह वह पथ है जिसमें प्रति-पग चुभनेवाला शूल मधुर है !
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है !

सम्मुख खड़ा देख विद्रोही,
हँस बढ़ता है अश्वारोही,
इस असफल युद्धस्थलि को यह दिग्विजयी प्रतिकूल मधुर है !
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है !

अंगारे को दीपक माना,
जल कर गिर जाता परवाना,
बलिदानी की मौन चिता पर उड़नेवाली धूल मधुर है !
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है !

६६

मोल करोगे क्या जीवन का !

कुछ तो सुख सपनों का भय है,
तो फिर कुछ अपनों का भय है,
पर इनसे भी ज्यादा भय है मुझको अपने भावुक मन का !
मोल करोगे क्या जीवन का !

आशा मिटकर भाव जगाती
कविता मौन अभाव जगाती,
श्वास विभाजन कर देती है, लघु-जीवन का दीर्घ-मरण का !
मोल करोगे क्या जीवन का !

जो वसंत का है अनुगामी,
जो भीगे पावस का स्वामी
पतझर तिरस्कार करता है ऐसे भाव-भरे सावन का !
मोल करोगे क्या जीवन का !

६७

कह रही सुप्त नीम की छाँह—

कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

प्रकृति से मानव होकर दूर,
कर रहा अपने पर अभिमान,
क्रान्ति मानों उसका अधिकार,
शान्ति है भीख, शान्ति है दान !

मुग्ध है फिर भी प्रकृति उदार,
युगल हाथों में ले उपहार,

जल रही भूमि, किंतु नभ बीच खड़ा शशि फैला शीतल बाँह !

कह रही सुप्त नीम की छाँह—
कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

अभी भी उपवन का अनुराग,
दे रहा है संदेश महान,
अभी भी पुण्य प्रकृति के बीच,
छिपे हैं कितने ही वरदान !
व्यक्ति कल्याण, देश कल्याण,
लोक कल्याण, विश्व कल्याण,

जल रही भूमि किन्तु नभ बीच खड़ा शशि फैला शीतल बाँह !

कह रही सुप्त नीम की छाँह—
कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

६८

यदि रवि से तारे कुछ न कहें !

उसमें न सबल का है विकास,
उसमें निर्बल का अट्टहास,
वन जाये भूमि उदधि ही यदि जल से अंगारे कुछ न कहें !
यदि रवि से तारे कुछ न कहें !

लहरें खेतों के नहीं पास,
तट की बालू बोली उदास,
दोनों सीमाएं तोड़ चलें यदि मौन किनारे कुछ न कहें !
यदि रवि से तारे कुछ न कहें !

शतदल पलकों को बंद किए,
बैठे हों निज मकरंद पिए,
मधु आंसू हो जायें यदि अलि निज हाथ पसारे कुछ न कहें !
यदि रवि से तारे कुछ न कहें !

६९

दिखता नहीं उस-पार है !

बैठा रहा आशा भरे,
नाविक किसी के आसरे,
अपलक नयन देखा किये, उठ उठ गिरी मँझधार है !
दिखता नहीं उस-पार है !

उन्मुक्त सागर है अजय,
रुकता भला क्यों मान भय,
उसका विसर्जन ध्येय, जिसके हाथ में पतवार है !
दिखता नहीं उस-पार है !

कुछ भी नहीं अब साथ है,
निश्चल इसी से हाथ, है,
अब बन चुका है पंथ का पाथेय पारावार है !
दिखता नहीं उस-पार है !

७०

नीड़ों का निर्माण व्यर्थ क्यों कर करे !

मुक्त गगन के हो चुके
बाल्य-विहग अभ्यस्त यदि,
मुग्ध-पवन से खेलने
में ही हों वे व्यस्त यदि,

पंखों पर परिधान व्यर्थ क्यों कर करे !
नीड़ों का निर्माण व्यर्थ क्यों कर करे !

जो केवल कुछ स्वार्थवश
ले पूजा का भार ले,
मन की दुर्बल भक्ति को
जो कर अंगीकार ले,

नर, नर को भगवान व्यर्थ क्यों कर करे !
पंखों पर परिधान व्यर्थ क्यों कर करे !

मैं सहसा डर कर खड़ी
अभिशापों के सामने,
पुण्य लूटने के लिए
प्रिय पापों के सामने,

कोई भी सम्मान व्यर्थ क्यों कर करे !
नर, नर को भगवान व्यर्थ क्यों कर करें !

७१

वह अम्वर फिर भी निराधार !

आधार भूमि को हिमगिरि का,
आधार भूमि को सागर का,
निशि, शशि, तारों को, गोदी ले कर रहा समुंदर सात पार !
वह अंवर फिर भी निराधार !

कंधे पर चढ़ बैठे वादल,
विजली भी अजमाती निज वल,
है लड़ना जिससे चाह रही झंझा लम्बी वाहें पसार !
वह अंवर फिर भी निराधार !

संध्या प्रातः में बिखर विखर,
धुंधला, मीठा चिड़ियों का स्वर,
करता रहता जिसमें प्रति दिन हँस हँस, रो रो नौका विहार !
वह अंवर फिर भी निराधार !

७२

आज तो मँझधार में विश्राम !
आज रोदन से मुझे है मोह,
आज गायन से मुझे विद्रोह,
सह रही हूँ जो व्यथा का भार,
आज तो उस भार में विश्राम !
आज तो मँझधार में विश्राम !

जो चला देने चरण को शांति
भर हृदय में युग युगों की क्रान्ति,
तृप्ति दे करके मिला अंगार,
आज तो अंगार में विश्राम !
आज तो मँझधार में विश्राम !

दे चला जो है नया इतिहास,
ले गया कुछ पूर्व का विश्वास,
हार देने को मिला जो प्यार,
आज तो उस प्यार में विश्राम
आज तो मँझधार में विश्राम

व्योम के तारे चुके हैं टूट,
चल दिया शशि भी अचानक छूट,
तिमिर का नव-घट गया है फूट,
देव ! तुम भी जा रहे हो रूठ,
दे मुझे मधुमास में पतझार,
आज तो पतझार में विश्राम
आज तो मँझधार में विश्राम

सामने सागर पड़ा स्वच्छन्द,
टूट सब उसके चुके हैं वंध,
प्रति लहर ही है प्रलय का छंद,
प्रबल गर्जन पर नहीं प्रतिबंध,
क्षीण हाथों में निबल पतवार,
आज तो पतवार में विश्राम
आज तो मँझधार में विश्राम



हमारे सांस्कृतिक प्रकाशन

[हिन्दी ग्रन्थ]

१. मुक्तिदूत-[पौराणिक रोमांस]—श्री० वीरेन्द्रकुमार जैन एम० ए० ५)
२. शेरो-शायरी—श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय ८)
३. पथचिह्न [स्मृतिरेखाएँ और निबन्ध]—श्री० शान्तिप्रिय द्विवेदी २)
४. दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां—श्री० डॉ० जगदीशचन्द्र एम० ए० ३)
५. वैदिक साहित्य—श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी ६)
६. पाश्चात्य तर्कशास्त्र—श्री जगदीश भिक्षु एम० ए० ६)
७. आधुनिक जैन कवि—श्रीमती रमा जैन ३।।)
८. जैन शासन—श्री० सुमेरचन्द्र दिवाकर ३)
९. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास—श्री० कामताप्रसाद जैन २।।=)
१०. कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न—श्री० गोपालदास पटेल २)
११. भारतीय विचारधारा—श्री० मधुकर २)
१२. मिलन यामिनी—कविवर बच्चन ४)
१३. मेरे बापू—हुकमचन्द्र 'बुखारिया' २।।)

[संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ]

१४. महाबन्ध—(महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) १२)
१५. न्याय विनिश्चय विवरण—(प्रथम भाग) १५)
१६. तत्त्वार्थवृत्ति—(हिन्दी सार सहित) १६)
१७. कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची १३)
१८. मदन पराजय—(हिन्दी सार सहित) ८)
१९. करलक्खण—(सामुद्रिक शास्त्र) १)
२०. केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ) ४)
२१. नाममाला— ३।।)
२२. सभाष्य रत्नमंजूषा—(छन्द शास्त्र) २)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुंड रोड बनारस ४

ज्ञानपीठके आगामी प्रकाशन

[जो शीघ्रही प्रकाशित हो रहे हैं]

१. **हमारे आराध्य**——ये रेखाचित्र श्री वनारसीदास चतुर्वेदीकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें उन्होंने अपनी आत्मा उँडेल दी है।

२. **शेर-ओ-सुखन (प्रथम भाग)** उर्दू शायरीका प्रारंभसे ई० सं० १९०० तक का प्रामाणिक इतिहास। तुलनात्मक विवेचन, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमें हुए प्राय: सभी मशहूर शायरोंके श्रेष्ठतम कलामका संकलन तथा उनका परिचय।

३. **सिद्धशिला (काव्य)** सिद्धार्थके ख्यातिप्राप्त कवि श्री अनूप शर्माकी हिन्दी संसारको अमर देन। भगवान् महावीरका हृदयस्पर्शी जीवन।

४. **रेखाचित्र और संस्मरण**–हिन्दीके तपस्वी सेवक श्री वनारसी-दास चतुर्वेदीकी जीवनव्यापी साधना। उनकी अन्तरात्माकी प्रतिध्वनि।

५. **भारतीय ज्योतिष**–ज्योतिषके अधिकारी विद्वान् श्री नेमिचंद्र जी जैन ज्योतिषाचार्यकी प्रामाणिक कृति।

६. **ज्ञानगंगा**–संसारके महान् पुरुषोंकी श्रेष्ठतम सूक्तियां।

नोट:——जो १०) भेजकर स्थायी सदस्य वन जाएंगे उन्हें उक्त ग्रंथ पौने मूल्य में प्राप्त होंगे।